प्रयोजन का तत्त्व जानना चाहता हूँ। श्रीभगवान् ने कहा, हे कुन्तिनन्दन! यह शरीर क्षेत्र कहलाता है और इसे जो जानता है, उसे ज्ञानीजन क्षेत्रज्ञ कहते हैं।।१-२।।

तात्पर्य

अर्जुन प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, ज्ञान और ज्ञान के प्रयोजन को जानना चाहता था। उसकी जिज्ञासा के उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा कि इस देह को क्षेत्र कहते हैं और इस देह को जानने वाला क्षेत्रज्ञ कहलाता है। यह देह क्षेत्र कहा जाता है, क्योंकि यह बद्धजीव का कार्यक्षेत्र है। संसार-बद्ध जीव माया पर प्रभुत्व करने का प्रयत्न करता है। अतः उसे ऐसा करने की अपनी योग्यता के उपयुक्त शरीररूपी कार्य-क्षेत्र मिलता है। यह शरीर इन्द्रियों का पुंज है। बद्धजीव को इन्द्रियतृप्ति की कामना है; अतः उसकी इन्द्रियतृप्ति करने की योग्यता के अनुसार उसे उपयुक्त देहरूपी कार्यक्षेत्र प्रदान किया जाता है। इसी कारण देह को बद्धजीव का क्षेत्र कहते हैं। देह की अपना स्वरूप न मानने वाला क्षेत्रज्ञ, अर्थात् देहरूपी क्षेत्र का ज्ञाता है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, देह और देही के भेद को समझना कठिन नहीं है। कोई विचार करके देख सकता है कि यद्यपि बचपन से वृद्धावस्था तक उसके शरीर में अनेक परिवर्तन होते रहे हैं, किन्तु वह स्वयं वही अव्यय आत्मा है। अतएव क्षेत्रज्ञ और क्षेत्र में निश्चित भेद है। इस प्रकार बद्धजीव जान सकता है कि वह देह से भिन्न है। गीता के प्रारम्भ में कहा गया है, **देहेऽस्मिन्** अर्थात् जीवात्मा देह में है और वह देह कौमार से यौवन और यौवन से जरा की प्राप्त होती है। देह का स्वामी पुरुष (देही) इन देहगत विकारों की जानता है। देही निश्चित रूप से क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीररूपी क्षेत्र का ज्ञाता है। जीव की अनुभव होता है, 'मैं सुखी हूँ, मैं उन्मत्त हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं श्वान हूँ, मैं बिल्ली हूँ।' ये सभी क्षेत्रज्ञ क्षेत्र से भिन्न हैं। हम यह भलीभाँति जानते हैं कि अपने उपयोग के वस्त्र आदि सब पदार्थों से हम अलग हैं। इसी प्रकार विचार करने पर यह भी जान सकते हैं कि हम देह से अलग हैं।

भगवद्गीता के प्रथम छः अध्यायों में जीवात्मज्ञान का और परमात्मज्ञान के साधन का विवेचन है। सातवें से बारहवें अध्याय तक श्रीभगवान् का और भक्तियोग के सन्दर्भ में जीवात्मा और परमात्मा के परस्पर सम्बन्ध का वर्णन है। इन अध्यायों में श्रीभगवान् की महिमा और जीवात्मा की परवशता का विशद और स्पष्ट वर्णन है। जीव सब परिस्थितियों में सब प्रकार से श्रीभगवान् के वश में हैं। वास्तव में इस सत्य को भूल जाने से ही वे संसार में दुःख भोग रहे हैं। जब पुण्यकर्मों के प्रभाव से आलोक का उदय होता है तो वे आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु अथवा ज्ञानी के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के उन्मुख हो जाते हैं। इसका भी वर्णन हुआ है। अब, तेरहवें से अट्ठारहवें अध्याय तक के अन्तिम षटक में प्रकृति और पुरुष के संयोग के कारण का विवेचन है तथा कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि विविध साधनों के माध्यम से श्रीभगवान् किस प्रकार उसका उद्धार करते हैं—यह सब वर्णन है। जीव देह से बिल्कुल भिन्न है; फिर भी जैसे-तैसे देह से उसका सम्बन्ध हो जाता है। यह भी प्रतिपादन है।